R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-17, अङ्क-5 मई 2018 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन का समाधि दिवस

तीर्थधाम चिदायतन में
श्री पवन जैन परिवार द्वारा आयोजित विधान की झलकियाँ

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-18, अङ्क-5 (वी.नि.सं. 2544) मई 2018

गतांक से आगे...

प्रशममूर्ति बहिनश्री के वचनामृतों का भावानुवाद

आकाश और पाताल एक हो, किन्तु चूकना ध्येय नहीं।
जिससे होवे आतम पोषण करना निश्चित कार्य वही॥
ध्येय पर आरूढ़ हो जिस पर, उसको पूर्ण अवश्य करना।
जिससे तेरे कार्य की सिद्धि, नियम से निश्चित होगी॥51॥

देह, देह का कार्य करे, और आतम आतम का करता।
दोनों भिन्न-भिन्न वस्तु है, अतः तू सुख और दुःख न कर।।
इस तन हेतु तूने, अबतक जन्म अनन्तों व्यर्थ किये।
अब अपने आतम हित हेतु, जीवन तू अर्पण कर दे॥52॥

निवृत्ति जीवन में हो तो, नहीं प्रवृत्ति सुहाती है।
मिटना हो तो मिट रोग, पर नहीं उपाधि भाती है॥53॥

अनुकूलता में न समझा, प्रतिकूलता में तो समझ।
समझ समझ तू कैसे भी और, अन्तरमें वैराग्य जगा॥54॥

भावानुवाद—संजयकुमार जैन

संस्थापक सम्पादक

स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार

श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक

पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल

ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण

बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़

डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर

पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन

श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर

श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली

श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई

श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी

श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

मार्गदर्शन

डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका

पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-

श्रीमती प्रज्ञा जैन,

कल्याणी जैन,

हस्ते श्री अजित जैन,

बड़ोदरा (गुजरात)।

क्या - कहाँ

सर्वज्ञकथित वस्तुस्वरूप 5

अलौकिक वीतरागमार्ग 9

चैतन्य की स्वानुभूति में... 11

चारित्र में बहती है... 15

अहो, ज्ञानधर्म! 18

नाटक सुनत हिये 21

भगवान श्री आचार्यदेव 24

उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला 27

सिर ढँकना लौकिक.... 31

समाचार-दर्शन 33

शुल्क :

वार्षिक : 50.00 रुपये

एक प्रति : 04.00 रुपये

सर्वज्ञकथित वस्तुस्वरूप समझने की सुगम पद्धति

[पंचास्तिकाय गाथा 8 के प्रवचन से]

[सूक्ष्मता से लक्षण द्वारा वस्तु का तत्त्व (स्वरूप) के समझने पर स्पष्टतया प्रतीति प्रसिद्धि और भाव-भासन होता है। अपनी पर्याय के लिये पर के सन्मुख देखने की आवश्यकता नहीं है। आत्मभूत लक्षण के ज्ञान द्वारा पराश्रय की श्रद्धा छूटकर स्वाश्रयरूप निर्मल भेदज्ञान होता है। आंशिक निश्चयधर्म-वीतरागभाव चतुर्थ गुणस्थान से प्राप्त होने लगता है।]

प्रत्येक द्रव्य में नित्य-अनित्यरूप अनेक धर्म पाये जाते हैं। वस्तु का स्वरूप-अस्तित्व सदा स्व से है, पर से नहीं है, ऐसी स्वभावदृष्टि सहित स्वीकार करके सभी द्रव्यों में स्वअस्तित्व-सत्तागुण की अपेक्ष संग्रहनय से देखने पर महासत्ता एक है, उसमें सबका स्वरूप अस्तित्व पृथक्-पृथक् ही है। महासत्ता द्रव्य का एक विशेषण है, वह कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। महासत्ता एक होने पर उसकी प्रतिपक्ष-अवांतर सत्ता अनेक हैं। यहाँ स्वरूप का अर्थ—स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और स्वभाव से प्रत्येक वस्तु का स्वरूप स्व-अस्तित्व से है, पर से नहीं है, पररूप में नहीं है, ऐसा जानना।

द्रव्य सत्, गुण सत्, और प्रत्येक समय नई-नई होनेवाली पर्याय भी सत् है; सामान्य द्रव्य और गुण है, वह नित्य शक्तिरूप होने से द्रव्यार्थिकनय का विषय है और पर्याय, वह उत्पाद-व्ययरूप अनित्य क्षणिक व्यक्ति होने से पर्यायार्थिक का विषय है। उसमें कारण-कार्य की सूक्ष्मता है। पर्याय के कारण से पर्याय है, ध्रुव के कारण से ध्रुव है। किंतु ऐसा नहीं है कि यह है तो दूसरे का अस्तित्व है।

प्रत्येक चेतन द्रव्य के चतुष्टय (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) सदा अरूपी होने से उसकी उत्पाद-व्ययरूप पर्यायें (-गुण की क्रिया) सदा अरूपी हैं,

अतीन्द्रिय ग्राह्य हैं और उसके सप्रतिपक्ष पुद्गलद्रव्यों के द्रव्य-क्षेत्र-काल -भावरूप चतुष्टय सदैव रूपी होने से (जीव के रूपवाला न होने से) सदा रूपी है; छह द्रव्यों में एक पुद्गलद्रव्य रूपी है, शेष द्रव्य अरूपी हैं।

प्रत्येक जीव-अजीव अपने से ही स्वद्रव्य-गुण-पर्याय में एक-अनेक और नित्य-अनित्यरूप से हैं। ऐसा होना पर के कारण नहीं है, न पूर्व पर्याय के कारण वर्तमान में है। आत्मा का ज्ञानगुण भी नित्य परिणामी है, अत: निरंतर ज्ञान की पर्याय ज्ञान से है, श्रद्धा गुण की पर्याय श्रद्धा से, सुखादि गुण की पर्यायें सब अपने-अपने अनुरूप अपने से हैं। ऐसा नहीं है कि पर के द्वारा उनका अस्तित्व है। इन कथनों का सार तो यह है कि पर से पृथक्ता और अपने ज्ञानानंदमय स्वरूप से अभिन्नता-पूर्णता है; उसे जानकर पर में कर्तृत्व-ममत्व माननेरूप अथवा ज्ञातापन की अरुचि, राग करने की रुचिरूपी मिथ्यात्व छोड़ना चाहिए। और वह मिथ्यात्वरूपी महापाप छोड़ने के लिए सर्व प्रथम प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र स्व से है, पर से नहीं है—ऐसा स्पष्ट भावभासनरूप अनुभव करे तो स्वाश्रयमय अपूर्वदृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन होता है।

भगवान आत्मा अपनी चैतन्यप्रभुता से सदा परिपूर्ण है, अखंड है, इस प्रकार अंतर्दृष्टि होते श्रद्धा-ज्ञानादिक गुण की पर्याय सम्यक् हुई, यह नियम है, किंतु ऐसा नहीं है कि सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई; इसलिए सम्यग्ज्ञान पर्याय प्रगट हुई, किंतु स्वद्रव्य का आश्रय होते ही एकसाथ अनंत गुणों की अनंतपर्यायें स्वाश्रय के अनुसार परिणमित होती हैं।

सब पर्यायें अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार अपनी योग्यता से हैं, पर के कारण नहीं हैं, ऐसा प्रथम स्वीकार करे तो निमित्त के ज्ञान को व्यवहारज्ञान कहा जाता है। उपादान के लक्ष्य सहित निमित्त का ज्ञान कराने के लिए निमित्त की मुख्यता से कथन होता है किंतु ऐसा कभी भी नहीं है कि निमित्त की मुख्यता से किसी का काम होता हो; अत: निमित्त होने पर भी निमित्त से कार्य नहीं हुआ, कार्य तो उपादान से ही होता है, यह नियम है।

पर से कार्य हुआ—ऐसा कथन उपचार-व्यवहारनय का है। निमित्त, उपादानकारण की प्रसिद्धि करता है। कोई जीव व्यवहार कथन को निश्चय के अर्थ में मान ले तो वह स्वतंत्र सत् का नाश करनेवाला अर्थात् कुदृष्टि है।

सर्वज्ञ भगवान ने अपने रागरहित ज्ञान में शब्द, अर्थ और ज्ञान का अस्तित्व स्पष्ट जाना है, प्रत्येक का अस्तित्व अपने से है, पर से नहीं। ऐसा नहीं है कि केवलज्ञान के कारण दिव्यध्वनि है। प्रत्येक वस्तु के कार्यकाल में उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अस्तित्व अपनी शक्ति से है, अन्य तो निमित्तमात्र हैं। सबकी स्वतंत्रता समझे बिना, स्वसन्मुखदृष्टि किये बिना, उसके माने हुए व्रत, तप, जप, दया, दानादिक के शुभभाव व्यवहारसाधन भी नहीं कहलाते।

ऐसी भी पराधीनता नहीं है कि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ज्ञान की पर्याय हुई है। ऐसा भी नहीं है कि जड़कर्म में कुछ हुआ, इसलिए ज्ञान में हीनाधिकता हुई है। जहाँ निमित्त से व्यवहार कथन हो, वहाँ उपादान, वस्तु की योग्यता कैसी है, यह बतलाना है। ऐसा नहीं है कि वाराणसी गया तो वह बड़ा पण्डित हुआ, काशी क्षेत्र से ज्ञान नहीं हुआ, ज्ञान तो ज्ञान से हुआ है। पूर्व पर्याय से, जड़कर्म से, राग से, वाणी से या गुरु से ज्ञान नहीं हुआ है, निमित्त तो निमित्तमात्र हैं, दूर ही हैं। एक द्रव्य में दूसरे का प्रवेश नहीं है। ऐसा नहीं है कि शिक्षक होशियार होने से शिष्य को ज्ञान हुआ। पर से कुछ नहीं आता; जैसे पत्थर में मीठापन नहीं है, उसे कौन दे? और शक्कर में मीठापन है तो उसे कौन देता है? आत्मा वाणी का कर्ता नहीं प्रेरक भी नहीं है; वाणी की अवस्था पुद्गल परमाणु से हुई है, ज्ञान की अवस्था अपनी योग्यता से ज्ञान के कारण हुई।

आत्मा भी नित्य-अनित्य स्वभाववाला सामान्य-विशेष धर्म सहित है। उसमें नय-विभाग द्वारा गौण-मुख्य करके अपना नित्य चिदानंदघन पूर्ण है, वह निश्चय परमात्मा है, जो आश्रय करने के अर्थ में उपादेय है। अंदर से स्वाश्रय के द्वारा निर्मल पर्याय प्रगट होती है, वह प्रगट करने के अर्थ में

उपादेय है, शेष सब जानने के अर्थ में उपादेय है। एक समय में तीन अंश हैं—उत्पाद उत्पाद से है, व्यय, व्यय से है, ध्रुव, ध्रौव्यत्व से है। ऐसा नहीं है कि अनित्य पर्यायें हैं, इसलिए ध्रुव है। एक पर्याय दूसरी पर्याय से नहीं है। यहाँ लक्षणदृष्टि से सूक्ष्म तत्त्वज्ञान का कथन है, सूक्ष्मता से स्वतंत्र वस्तु समझने से भावभासनरूप स्पष्टज्ञान-पक्का ज्ञान होता है।

प्रश्न—यदि ऐसा माना जाए कि रागादि विकार को जीव करता है, तो उसे स्व से सत् मानने से विकार वह जीव का स्वभाव हो जाएगा; अत: रागादि पर के कारण होता है, ऐसा माना जाये तो ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि विकारी अशुद्धदशा जीव की अनित्य पर्याय का स्वभाव है, अशुद्ध निश्चयनय से वह जीव का स्वतत्त्व है; पंचास्तिकाय गाथा 6 में कहा है कि अशुद्धत्व में भी कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण छहों कारक स्वतंत्र हैं। अपनी पर्याय में चारित्रगुण की अशुद्ध उपादानरूप रागादि पर्याय स्वतंत्र है, उसे निश्चय से-स्व से सापेक्ष और पर से निरपेक्ष-अहेतुक माने तो व्यवहार से परसापेक्ष कहा जाता है।

ऐसा नहीं है कि जीव में दर्शन-ज्ञानपर्याय है, इसलिए रागपर्याय है। ज्ञानांश-रागांश एक साथ एक काल में अपनी-अपनी स्वतंत्र योग्यता से ही हैं, किंतु ऐसा नहीं है कि निमित्त है तो राग है, ज्ञान है तो राग है या राग है तो ज्ञान है। ज्ञान के कारण ज्ञान है, राग के कारण राग है, और देहादि पुद्गल अथवा जीव में जो क्षेत्रांतररूप क्रिया दिखाई देती है, वह भी स्वतंत्र अपनी-अपनी क्रियावतीशक्ति के कारण हैं। उससे विरुद्ध मानना छह काय की हिंसा है।

संयोगदृष्टिवान जीव स्वाश्रयज्ञान का तिरस्कार करते हैं। राग की कर्तृत्वबुद्धि होने से रागादि संयोगीभाव की रुचि और महिमा करते हैं। उसे कभी अंतर्मुख स्वतत्त्व की महिमा आती नहीं। संयोग की ओर से देखनेवाला या औदयिकभाव के भरोसे देखनेवाला ज्ञानी की पहिचान नहीं कर सकता, गृहस्थदशा देखकर ज्ञानी का और ज्ञान का तिरस्कार करते हैं,

शेष पृष्ठ 14 पर...

आत्मा को अपूर्व शांति तथा समाधि देनेवाला

अलौकिक वीतरागमार्ग

सर्वज्ञदेव का मार्ग अपूर्व अलौकिक है; उस मार्ग का सेवन करने से आत्मा में परम वीतराग शांति है। जिसमें शांति न मिले, वह वीतराग का मार्ग नहीं है। वीतराग का मार्ग तो वीतरागभाव से परम अतीन्द्रिय शांति देनेवाला है। अरे जीव! वीतराग का ऐसा मार्ग तुझे मिला है, तो अब अन्य उपाधि छोड़कर वीतरागभाव से अपने परमात्मतत्त्व का चिंतवन कर, उसमें तुझे परम शांति, परम आनंद और परम समाधि होगी।

[श्री नियमसार गाथा 122 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

समाधि अर्थात् आत्मा की सच्चा शांति और आनंद किस प्रकार होता है, उसकी यह बात है। आधि-व्याधि और उपाधि रहित जो वीतरागी शांतभाव, वह समाधि है। इस समाधि में बाह्य का कोई अवलंबन नहीं किंतु अपने शुद्ध आत्मा का ही आलंबन है। वीतरागभाव द्वारा अपने आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव करना, वह समाधि की विधि है।

मुमुक्षु धर्मी को पंच परमेष्ठी भगवान के प्रति बहुमान-स्तुति का प्रशस्तभाव आता है; परंतु परम समाधि में तो उस प्रशस्तराग का भी अवलंबन नहीं है। सर्वज्ञ परमात्मा अरिहंत और सिद्ध भगवंतों को अचिंत्य परम वीतराग-वैभव प्रगट हुआ है तथा साधु-मुनियों को भी आत्मा के प्रचुर स्वसंवेदन द्वारा अत्यंत आनंदमय वीतराग वैभव प्रगट हुआ है। अशुभ से छूटने के लिए मुमुक्षु जीवों को परमयोगी-मुनियों को भी ऐसे परमेष्ठी भगवंतों की स्तुति, बहुमान कर्तव्य है; उसमें प्रशस्तभाव है। तथा परमार्थ समाधि में लीन ऐसे निर्विकल्प संतों को तो अतीन्द्रिय आनंद में ऐसी एकाग्रता है कि प्रशस्त व अप्रशस्त किसी रागवृत्ति का उत्थान ही नहीं होता; वे तो परम वीतरागभाव से अपने ज्ञायकस्वरूप का ही ध्यान करते हैं।

भगवान आत्मा तो त्रिकाल कर्मकलंक से रहित है तथा उसके सन्मुख होनेवाली पर्याय भी कर्मकलंक से रहित है। शुभविकल्प का विषय आत्मा

नहीं है, आत्मा तो रागरहित वीतरागी चेतना का ही विषय है। राग तो आस्रवतत्त्व है, वह कहीं जीवतत्त्व नहीं; स्वभावसन्मुख हुई चेतना भी रागादि आस्रव से रहित होकर संवर-निर्जरारूप हुई है। अरे, संसार के रस में रमनेवाले जीवों को इस चैतन्यतत्त्व के रस का स्वाद कहाँ से आयेगा? चैतन्य का रस जिसे प्रगट हुआ हो, उसे संसार में अन्य किसी का रस नहीं रहता है। चैतन्य की ओर जो भाव उन्मुख हुआ, वह भाव राग से मुक्त हो गया, इसलिए वह पर्याय आस्रवरहित हुई, ऐसी अंतर्मुख पर्याय ही समाधि है, उसमें किसी परभाव की उपाधि नहीं है। जीवन जीते-जीते ही धर्मात्मा को आत्मा की ऐसी समाधि का अनुभव होता है।

सर्वज्ञदेव का मार्ग अपूर्व अलौकिक है, उस मार्ग का सेवन करने पर आत्मा को परम वीतरागी शांति होती है। जिसमें शांति न मिले, वह वीतराग का मार्ग नहीं है। वीतराग का मार्ग तो वीतरागभाव द्वारा परम अतीन्द्रिय शांति देनेवाला है। अरे जीव! वीतराग का ऐसा मार्ग तुझे मिला, तो अब अन्य उपाधि छोड़कर वीतरागभाव से अपने परमतत्त्व का चिंतवन कर, उसमें तुझे परम शांति, परम आनंद और परम समाधि होगी।

अतीन्द्रिय आनंद से भरपूर समुद्र तेरा आत्मा, उसके आनंदरस का रसिया होकर उसी को अंतर में वीतरागभावरूप ध्यान का विषय बना। इसके अतिरिक्त अन्य किसी के आश्रय से शांति का वेदन नहीं होता है। सम्यग्दर्शन करने के लिए भी प्रथम अपने शुद्ध आत्मा को ही ध्येय बनाकर लक्ष्य में ले। सम्यग्दर्शन में भी कोई अपूर्व समाधि है। सम्यग्दर्शन भी पुण्य और पाप दोनों से रहित है, तथा आत्मा के आश्रय से ही उसकी उत्पत्ति है।

अरे, ऐसा अलौकिक वीतरागमार्ग, आत्मा के अपने स्वभाव का मार्ग! उसे हे जीव! तू स्वानुभवगम्य कर। वह स्वानुभव से ही गम्य है। स्वानुभव के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग से आत्मा का स्वभाव हाथ में नहीं आता, तथा स्वघर में निवास नहीं होता। स्वभाव के स्वघर में प्रवेश करके पर्याय उसमें निवास करे, वही अपूर्व आनंदमय वास्तु-प्रवेश है। श्री वीतरागभाव से आत्मा में निवास करते हैं, उनको भगवान निजगृहवासी कहते हैं।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-6 (अक्टूबर-1971), वर्ष-27]

चैतन्य की स्वानुभूति में ही मेरी शोभा है

[भाद्रपद शुक्ला 15, श्री नियमसार श्लोक-173 से 179]

जिस प्रकार सुंदर स्त्रियों के कटाक्षबाण द्वारा भी मुनियों के हृदय विचलित नहीं होते, उसी प्रकार संकल्प-विकल्प के द्वारा चैतन्यतत्त्व विचलित नहीं होता; धर्मी जीव अपने चैतन्यतत्त्व को समस्त संकल्प-विकल्प से पृथक् ही जानता है। हे जीव! ऐसे शांत-सुंदर अपने तत्त्व को भूलकर तू परभाव के कोलाहल में कहाँ रुका हुआ है ?

जिस प्रकार बड़े पुरुषों की उपस्थिति में बालक ऊधम करे तो माता उसे डाँटती है कि, अरे बेटा! यह तुझे क्या हुआ है ? ऐसे महान पुरुष सामने बैठे हैं और तू ऐसा ऊधम करता है, यह क्या तुझे शोभा देता है ? उसी प्रकार जो राग से लाभ मनाते हैं, ऐसे जीवों को जिनवाणी माता उलहना देती है कि, अरे जीव! महान परमात्मा अंतर में साक्षात् तेरे निकट विराजमान है और उसकी उपस्थिति में तू राग से लाभ मानकर परभाव के उत्पाद करता है—यह क्या तुझे शोभा देता है ? नहीं, तेरी शोभा तो राग से रहित चैतन्य की स्वानुभूति द्वारा ही है।

मुमुक्षु जीव अपने निर्विकल्प शुद्धतत्त्व को बराबर जानते हैं; तीन लोक को जानने का जिसका स्वभाव है, तथा कहीं भी एक विकल्प करने का जिसका स्वभाव नहीं है—ऐसे शुद्ध निर्विकल्प तत्त्व मैं ही हूँ—ऐसा स्वानुभव से अत्यंत स्पष्ट मुमुक्षु जीव जानते हैं। इस प्रकार स्वतत्त्व को जानकर शुद्धोपयोग से उसमें एकाग्रतारूप शुद्धशील के आचरण द्वारा वह मुमुक्षु जीव सिद्धि को प्राप्त होता है।

देखो, स्वतत्त्व कैसा है ? तथा वह कैसे जाना जाता है ? अर्थात् वह अनुभव में कैसे आता है, उसकी यह बात है। अपनी ज्ञानपर्याय से अपना आत्मा ज्ञात होता है। जब ज्ञानपर्याय को स्वभावसन्मुख एकाग्र करने पर

ज्ञानमय पूर्ण वस्तु जानने में आयी, तब उसने आत्मा का अनुभव किया। ऐसे आत्मा को जानकर उसमें एकाग्र होने पर शुद्ध शील का आचरण होता है। पर से भिन्न अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायरूप एक संपूर्ण चैतन्यवस्तु है; उसमें द्रव्य-गुण को भूलकर जो मात्र पर्याय जितना ही अपने को अनुभव करे, उस जीव को (प्रवचनसार की गाथा 93 में) पर्यायमूढ़—मिथ्यादृष्टि कहा है। शुद्धपर्याय के भेद करके उसके विकल्प में रुक जाए, तो भी उसे विकल्प के साथ एकता होने से उसको शुद्धपर्याय प्रगट नहीं होती। शुद्धपर्याय तो तभी होती है कि जब द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद का भी आश्रय छोड़कर एक अभेद शुद्धआत्मा का अवलंबन लेकर उस अभेद का अनुभव करे।

मुनि तथा सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा आनंदसहित अपने अंतर में ऐसे निर्बाध तत्त्व का अनुभव करते हैं। उस निर्बाध चैतन्यतत्त्व का किसी के द्वारा छेदन नहीं होता। जिस प्रकार सुंदर स्त्रियों के कटाक्षबाण से भी मुनियों के हृदय छिदते नहीं हैं, उसी प्रकार संकल्प-विकल्प से चैतन्यतत्त्व का भेदन नहीं होता, धर्मी अपने चैतन्यतत्त्व को समस्त संकल्प-विकल्प से पृथक् ही रखता है। अरे जीव! ऐसे अपने शांत-सुंदर तत्त्व को भूलकर तू परभाव के कोलाहल में कहाँ अटका हुआ है?

जिस प्रकार महान् पुरुषों की उपस्थिति में बालक ऊधम करे तो माता उसे डाँटती है कि, अरे बेटा! यह तुझे क्या हुआ? ऐसे महान् पुरुष सामने बैठे हैं और तू ऐसा ऊधम करता है, यह क्या तुझे शोभा देता है! उसी प्रकार राग से जो लाभ मनाते हैं, ऐसे जीवों को जिनवाणी माता उलहना देती है कि, अरे जीव! महान् परमात्मा अंतर में साक्षात् तेरे निकट विराजमान है और उसकी उपस्थिति में तू राग से लाभ मानकर परभाव के उत्पात करता है—यह क्या तुझे शोभा देता है? नहीं, तेरी शोभा तो राग से रहित चैतन्य की स्वानुभूति द्वारा ही है। अरे, 'तू राग कर, तुझे राग से लाभ होगा'—ऐसे राग का उपदेश क्या मुनि या धर्मी को शोभा देता है? नहीं। वीतरागता के साधक जीव तो वीतरागता से ही लाभ मनाते हैं, वीतरागता का ही उपदेश देते हैं,

तथा उसी का आदर करते हैं; वीतरागभाव से ही उनकी शोभा है।

वीतरागी गुरु तो वीतरागमार्ग का ही उपदेश देते हैं। जो राग की पुष्टि का उपदेश देते हैं उन्हें वीतरागमार्गी कौन कहेगा? जो मिथ्यामार्ग का उपदेश दें, 'तू यह नया पाप कर'—ऐसा पाप का उपदेश दें, वे तो वीतरागमार्ग से विरुद्ध हैं। धर्मी तो कहते हैं कि हमारा तत्त्व राग से अत्यंत भिन्नरूप जयवंत है। अहो, उस तत्त्व की महिमा की क्या बात!

देखो तो सही! मुनि तो सिद्धों के साथ बातें करते हैं। प्रभो! आपके जैसा मेरा स्वभाव मैंने अपने में अनुभव किया है, इसलिए मैं आपके समीप ही हूँ। आपसे किंचित् भी दूर नहीं।

अहो, ऐसा सच्चिदानंदतत्त्व अचिंत्य महिमावंत, स्वयं ही है, उसकी प्राप्ति के लिए किसी अन्य की महिमा की आवश्यकता नहीं है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ भी अपने ऐसे शुद्धतत्त्व का ही अनुभव करता है। अहो, मेरा आत्मा ही कल्याण की मूर्ति है। उसे दृष्टि में लिया है, इसलिए मेरा कल्याण ही है; प्रत्यक्षस्वभावी आत्मा पर्याय में भी स्वानुभवप्रत्यक्ष हुआ है; अहा! ऐसा प्रत्यक्ष अंश जिसमें से आया है, वह परिपूर्ण वस्तु प्रत्यक्षस्वभावी ही है, इस प्रकार स्वसंवेदनप्रत्यक्ष के बल से धर्मी अपने प्रत्यक्षस्वभावी आत्मा को नि:शंक जानता है। वह जाननेवाले ज्ञान तो मति-श्रुत हैं, तथापि उन ज्ञान में इन्द्रिय-मन का या राग का अवलंबन नहीं है। अतीन्द्रियस्वभावी चेतनवस्तु है, उसका अवलंबन करने से पर्याय भी वैसी अतीन्द्रिय हो गई है। ऐसे आत्मा का स्वसंवेदन होने पर धर्मी जानता है कि आनंद का और ज्ञान का धाम मैं ही हूँ। ज्ञान का मंदिर, आनंद का मंदिर मैं ही हूँ, मुझसे बाह्य अन्य कहीं मेरा ज्ञान-आनंद नहीं है। इस प्रकार स्वसन्मुख अनुभूति करनेवाले धर्मात्मा को अपना आत्मा सुलभ ही है, दुर्लभ नहीं है, दूर नहीं है।

सम्यग्दृष्टि जानता है कि, मेरा आत्मा उत्कृष्ट समता का घर है। तीन लोक में कोलाहल हो, तथापि जो अपनी समता से नहीं चले, ऐसा मेरा आत्मा है; परभावों के प्रपंच से वह दूर है, परंतु मेरे स्वभाव में वह मुझे

निरंतर सुलभ है। मेरा शुद्धतत्त्व मुझमें सदा प्राप्त ही है, सदा मुझे सुलभ ही है, मैं अपने में सदा प्राप्त ही हूँ। मेरा तत्त्व मुझसे दूर नहीं। मन-वाणी से दूर है, परंतु स्वानुभव से वह मुझमें सुलभ है।—ऐसा जो अपना शुद्धतत्त्व है, वह नमन करनेयोग्य है, उसमें अंतर्मुख होकर एकाग्र होने जैसा है। हम उसी को नमस्कार करते हैं।

अहो, आत्मा तो शांतरस का समुद्र है, जहाँ केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा का चंद्र सोलह कलाओं से उदित हुआ, वहाँ शांतरस का समुद्र उछला। यह केवलज्ञानचंद्र सदा सोलह कलाओं से विकसित हुआ है, उसके साथ परम शांतरस प्रगट होता है, वैसा ही मेरे आत्मा का स्वभाव है—ऐसा है जीव! तू अपने स्वभाव का विश्वास कर! तेरे आत्मा का संकल्प-विकल्प करने का स्वभाव नहीं, केवल अनाकुल शांतरस ही तेरे में भरा हुआ है, ऐसे स्वरूप में दृष्टि करने से शांतरस का समुद्र अपने में उल्लसित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है... अनंत शांति का अपने आत्मा में वेदन होता है; अपनी परिणति द्वारा अपने शांतरसमय भगवान का मैं स्वागत करता हूँ।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-6 (अक्टूबर-1971), वर्ष-27]

सर्वज्ञकथित वस्तुस्वरूप....

...पृष्ठ 8 का शेष

तब सम्यग्दृष्टि जीव तो नित्य ज्ञानचेतना के स्वामित्वभाव से ही परिणमन करनेवाला होने से किसी भी राग को करनेयोग्य नहीं मानता। चारित्रदोष जितना राग हुआ, उस समय भी ज्ञानी की दृष्टि रागादि में नहीं है, देहादि, रागादि से भिन्न मैं ज्ञान हूँ, अत: वह सर्वत्र ज्ञान की ही प्रसिद्धि करता हुआ अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानता है। राग होने पर राग की रुचि नहीं है। राग, राग का है। ज्ञानी राग में नहीं हैं, ज्ञान में ही हैं। ऐसे निर्मल भेदविज्ञान से प्राप्त नित्य ज्ञानचेतना के स्वामित्व से ज्ञानी रागादि सर्व व्यवहार-भावों से मुक्त हैं। [आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-5 (सितम्बर-1971), वर्ष-27]

चारित्र में बहती है आनंद की धारा

[नियमसार-टीका श्लोक 186-187-188]

मेरा मार्ग और वीतराग परमात्मा का मार्ग किंचित्मात्र भिन्न नहीं है

आत्मा ज्ञानमूर्ति है, उसके सन्मुख होकर उसका जो रागरहित अतीन्द्रियवेदन होता है, वह आनंद है, वह धर्म है; उसमें आत्मा की उपलब्धि है।

कर्मरहित और अनंत आनंदसहित जो ज्ञानमूर्ति आत्मा, उसकी अनुभूति में आनंद की तरंगें उठती हैं। आत्म-अनुभूति में तो शांतरस की तीव्र जलधारा सतत गिरती है तथा भव का दावानल बुझ जाता है। ऐसी दशावाले जीव को संयम और चारित्र होता है।

शुभविकल्प कहीं चारित्र व ज्ञान नहीं हैं, उसमें कहीं आनंद की धारा नहीं है, तथा वह कहीं वीतरागमार्ग नहीं है; अंतर में आत्मा की उपलब्धि से प्राप्त हुआ जो ज्ञान और चारित्र, उसमें आनंद की धारा उल्लसित होती है, वही वीतरागमार्ग है। भाई! तेरा मार्ग और वीतरागमार्ग किंचित्मात्र पृथक् नहीं है। यदि पृथक्त्व भासित हो तो वह सच्चा मार्ग नहीं है।

राग की जाति भिन्न है, ज्ञान की जाति भिन्न है; दोनों की भिन्नता का अनुभव करके ज्ञान में जो एकाग्रता हुई, वह चारित्र है, उसमें आनंद की धारा प्रगट होती है, वह वीतराग का साक्षात् मार्ग है।

राग में तो भव का दावानल है; वह अशुभ हो या शुभ, उसमें चैतन्य की शांति किंचित्मात्र नहीं है। वह दावानल ज्ञानजल द्वारा ही बुझाया जाता है। अंतर में परिपूर्ण शांतरस का समुद्र आत्मा, उसको सम्यग्ज्ञान द्वारा प्राप्त करके अनुभव में लेने पर शांतरस की जोरदार धारा गिरने से भव के दावानल को बुझा देती है। स्वानुभूति में धर्मी को कोई अलौकिक शांति है।

चैतन्यसूर्य में से जो ज्ञान की किरणें प्रगट होती हैं, वे अज्ञान-अंधकार को दूर करती हैं; वहाँ स्वभाव-सन्मुख एकाग्रता से शीघ्र ही शांतरस की

धारा उल्लसित होती है। परिणति परभावों से छूटकर इतनी शीघ्रता से अंतरोन्मुख हुई कि शांतरस की जोरदार वर्षा हुई, और अनादि के परभाव की आकुलता को नष्ट कर दिया। ऐसी ज्ञानी की दशा है। तथा ऐसे ज्ञानी के आत्मा के चारित्र में आनंद की धारा बहती है। ज्ञानी के चारित्र की अद्‌भुत आनंदधारा को अज्ञानी कैसे पहिचान सकेगा ? अंतर में जाकर राग से रहित ज्ञान का स्वयं अनुभव करे, तभी उसका पता लग सकता है। अज्ञान में रहकर जीव चाहे जितना करे, तथापि उसे शांति व आनंद का अनुभव नहीं होता। सम्यग्ज्ञानी ने ज्ञान और राग की भिन्नतारूप भेदज्ञान की चाबी द्वारा आत्मा के भंडार का ताला खोल लिया है, वह अपने आनंद को अपने में देखता है।

अहा, चैतन्य का ऐसा आनंद! तथा उसे बतलानेवाली वीतराग की वाणी! उसको सुनने के लिए महान पात्रता चाहिए। सिंहनी के दूध जैसी वीतराग की वाणी, तथा वीतराग के भाव, उनको झेलने के लिए वीतराग परिणतिरूप सोने का पात्र चाहिए; वह रागरूप लोहे के पात्र में नहीं रहता। राग की रुचिवाला जीव, वीतराग की वाणी को सहन नहीं कर सकता, उसकी परिणति में आनंदरस की धारा नहीं उतरती; चैतन्यस्वभाव में स्वसन्मुख होकर, राग से भिन्न हुई जो शुद्धज्ञानपरिणति, वही चैतन्य की आनंद धारा को झेलती है, वही वीतराग की वाणी को झेलती है।

अहो, समयसार-नियमसाररूपी यह अध्यात्मशास्त्र तो अमृत के सागर हैं; क्योंकि उनमें कहे हुए चैतन्यभाव को समझने पर सम्यग्ज्ञान में आनंद का समुद्र उल्लसित होता है... ऐसे चैतन्यसमुद्र में जो गोता लगाता है, उसी को संयमरूपी रत्नमाला प्राप्त होती है। भाई, अपने चैतन्यसमुद्र में एकबार दृष्टि तो कर! तुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी रत्नमाला प्राप्त होगी... तथा तू मोक्ष का स्वामी होगा। देखो, ऐसी ज्ञानदशावाले जीव को ही आनंदमय चारित्रदशा होती है; दूसरों को उस चारित्र की खबर नहीं है।

चारित्रवंत मुनियों के चित्त में कौन निवास करता है ? उन चारित्रवंत

मुनियों के चित्त में अपना परम आत्मतत्त्व ही निवास करता है; परमतत्त्व के अतिरिक्त कोई रागादि परभाव उनके चित्त में निवास नहीं करते। अहा! जिनकी ज्ञानपर्याय में परमात्मा निवास करते हैं, जिनकी ज्ञानपर्याय में संसार नहीं वर्तता, ऐसे मुनि को मोक्षसुख के कारणरूप चारित्र होता है। मुनियों के चित्त में जिसका निवास है, ऐसे इस परमतत्त्व को मैं सदा नमता हूँ.... अपनी ज्ञानपर्याय को अंतर्मुख करके, उसमें मैं अपने परमात्मा का अनुभव करता हूँ। अहो! मैंने अपनी ज्ञानपर्याय में अपने परमात्मा को बसाया है, राग का उसमें निवास नहीं है। राग को भिन्न जानकर परमात्मतत्त्व में अपनी ज्ञानपर्याय को एकाग्र करने से अपूर्व आनंद की धारा मुझमें बरसती है। ऐसी आनंदरस की उग्रधारा जहाँ बरसे, वहीं चारित्र होता है, और वह चारित्र मोक्षसुख का कारण है। इसलिए मैं, आत्मा अपनी पर्याय द्वारा अपने परमात्मतत्त्व को नमस्कार करता हूँ।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-6 (अक्टूबर-1971), वर्ष-27]

स्वानुभव की किरण में मोक्षमार्ग

स्वानुभवरूपी सूर्य की किरण से ही मोक्षमार्ग दिखता है। जहाँ स्वानुभव की किरण नहीं, वहाँ मोक्षमार्ग दिखता नहीं। राग तो अंधकारमय बंधभाव है, उससे मोक्षमार्ग कहाँ से सधेगा? अरे, बंधभाव व मोक्षमार्ग के बीच भी जिसको विवेक नहीं है, उसको शुद्धात्मा का वीतरागी संवेदन कहाँ से होगा? और स्वानुभव की किरण फूटे बिना मोक्षमार्ग का प्रकाश कहाँ से होगा? पुण्य-राग की रुचिवालों को स्वानुभव की कणिका भी नहीं है, तब मोक्षमार्ग कैसा? स्वानुभव के सिवाय अन्य जो कोई भाव करे, वे सब भाव बंधभाव में हैं, वह कोई भाव मोक्षमार्ग में नहीं आते और न उनसे मोक्षमार्ग सधता है। स्वानुभवरूपी सूर्य का उदय हो, तभी मोक्षमार्ग सच्चा।

अहो, ज्ञानधर्म!

[अंतर्मुख होकर शुद्धात्मज्ञान की सम्यक्भावना ही कर्तव्य है।]

(श्री नियमसार, गाथा 116 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन)

धर्म अर्थात् आत्मा का नित्य ज्ञानगुणस्वभाव; उस स्वभाव की रागरहित निर्विकार परिणति, वह मोक्ष के साधनरूप धर्म है। आत्मा ने अपने ज्ञानधर्म को सदा अपने में धारण कर रखा है; ऐसे आत्मा की सम्यक्भावना द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म प्रगट होता है।

सर्वज्ञस्वभाव वह आत्मा का उत्कृष्ट धर्म है; त्रिकाल अनंत धर्म हैं, उनमें सर्वज्ञस्वभावरूप धर्म मुख्य है; उस सर्वज्ञस्वभाव के सन्मुख होकर प्रतीति करते ही मोक्षमार्ग प्रारंभ होता है।

ज्ञानधर्म महान है-उत्कृष्ट है; ज्ञान में राग नहीं है; ज्ञान की अनुभूति राग से पार है। शुद्धज्ञान की अनुभूति में आत्मा आ जाता है। ज्ञान को आत्मा ही कहा है। ऐसे ज्ञानस्वभाव की सम्यक्भावना में चित्त की अत्यंत शुद्धि होने से उसे प्रायश्चित्त कहा जाता है; उसमें ज्ञान की अतिशयता है और रागादि दोषों का परिहार है।

शरीर-मन-वाणी को एक ओर रखो, वे तो पर ही हैं; अंतर में जो रागादि परभाव हैं, उन्हें भी ज्ञान से भिन्न ही जानो; ज्ञानधर्म में राग नहीं है। आत्मा ज्ञानधर्म जितना है, उसका उत्कृष्ट ज्ञानस्वभाव होने से वह स्वयं प्रायश्चित्त है। अहो, ऐसा ज्ञानधर्म आत्मा का अपना है; उसके द्वारा आत्मस्वरूप की पहिचान होती है।

धर्म को धारण करनेवाला आत्मा है, उसे जाने बिना धर्म नहीं होता। जाननेवाले को जाने बिना सच्चा ज्ञान कहाँ से होगा? जो ज्ञाता है, जो स्वयं ज्ञानस्वरूप है, ऐसी स्वसत्ता को जानने से और उसमें लीन होने से मुक्ति के मार्गरूप शुद्धज्ञान प्रगट होता है, उस शुद्धज्ञान को निश्चय प्रायश्चित्त कहा जाता है; उसमें मिथ्यात्वादि सर्व-दोषों का अभाव है।

मुनि शुद्धात्मज्ञान की सम्यक्भावना करनेवाले हैं। अपने शुद्धज्ञान-स्वरूप की सम्यक्भावना कब होती है ? कि उस स्वभाव के सन्मुख होने से उसकी सम्यक्भावना होती है। पर के, राग के या पर्यायभेद के सन्मुख रहकर शुद्धज्ञान की सम्यक्भावना नहीं होती; परंतु पर के पराङ्मुख; राग से रहित और पर्यायभेदों से पार होकर, अंतर सन्मुख अभेद परिणति द्वारा आत्मा की सम्यक्भावना होती है; वह सम्यक्भावना ही सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र है; उसमें ध्येयरूप अपना शुद्धआत्मा ही है, अन्य कोई नहीं।

अहो, मेरा आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर है; उसमें अतीन्द्रिय शांति है; अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव में अनंत धर्मों का समावेश है—ऐसे अपने ज्ञान की प्रतीति करने से अपना उत्कृष्ट सर्वज्ञस्वभाव स्वानुभव में मुझे प्रत्यक्षगोचर होता है; इसलिए सर्वज्ञपर्याय प्रगट करने के लिए कहीं बाह्य में-राग में देखना नहीं रहता; मेरा सर्वज्ञस्वभाव जो मुझमें सत् है ही, उसका स्वीकार करके उसकी सम्यक्भावना द्वारा उसमें से सर्वज्ञता आयेगी। ऐसी धर्मी को प्रतीति है।

सर्वस्वभाव को स्वीकार करके जीव स्वयं सर्वज्ञता के मार्ग पर चलने लगा। रागवाला, इन्द्रियज्ञानवाला मैं हूँ, ऐसा अनुभव करनेवाला जीव मिथ्याभाववाला है, क्योंकि वह अपने सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार नहीं करता। सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार करनेवाली परिणति तो राग से तथा इन्द्रियज्ञान से भिन्न हो जाती है और अतीन्द्रिय होकर अंतरस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव करती है। इसलिए अंतर्मुख होकर शुद्धज्ञान की ऐसी सम्यक्भावना कर्तव्य है।

मुझे तो अपने आत्मा के ज्ञानस्वभाव के साथ काम है, अन्य किसी के साथ मुझे काम नहीं है। दूसरे जीव मानें, दूसरों को समझाना आये या न आये, दूसरी जानकारी हो या न हो, मुझे तो अपने में जो सर्वज्ञस्वभावरूप परमधर्म है, उसके साथ प्रयोजन है, इसलिए उसी के सन्मुख होकर मैं उस एक को ही सदा भाता हूँ, बारम्बार उसी का परिचय करता हूँ।

'अरे, पंचम काल में सर्वज्ञ भगवान का विरह हुआ!' परंतु कहीं अपने सर्वज्ञस्वभावी आत्मा का विरह है? नहीं; जिसमें से सर्वज्ञता प्रगट होती है, ऐसा सर्वज्ञस्वभावी आत्मा तो प्रत्यक्ष-प्रगट अंतर में विराजमान है; अपना अपने को कभी विरह नहीं है। ऐसे सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को जिसने पहिचाना, वह सर्वज्ञ के मार्ग में आ गया; अपने में ही भगवान की साक्षात् भेंट होने से सर्वज्ञ का विरह मिट गया, उसने भगवान को प्रसन्न कर लिया, वह स्वयं वीतरागमूर्ति हो गया। सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि समस्त भाव वीतरागता के ही प्रकार हैं, वे कहीं राग के प्रकार नहीं हैं, इसलिए सम्यग्दर्शनादि सर्वधर्म वीतरागता की ही मूर्ति हैं, जिसे सम्यग्दर्शनादि हुए, वह वीतरागमूर्ति हुआ। आत्मा के ज्ञानधर्म की सम्यक्भावना द्वारा ऐसा धर्म होता है; इसलिए मुमुक्षु जीवों को अंतर्मुख होकर अपने शुद्धज्ञानमूर्ति आत्मा की सम्यक्भावना करनेयोग्य है। बारम्बार, क्षण-क्षण परम महिमा लाकर अपने ज्ञानस्वभाव में परिणति लगाने योग्य है, वह सम्यक्भावना मुक्ति का कारण है।

शुद्धात्मा की ऐसी सम्यक् भावनावंत मुनियों को मैं आदरपूर्वक उनके गुणों की प्राप्ति हेतु वंदन करता हूँ, अर्थात् मैं भी रागादिभावों की भावना छोड़कर अपने शुद्धात्मा के सन्मुख होकर उसकी सम्यक् भावना भाता हूँ।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-6 (अक्टूबर-1971), वर्ष-27]

.....

अरे जीव! तू देह में सुख मानकर और देह की प्रतिकूलता में दुःख मानकर सो रहा है—परंतु सुन! तेरा तत्त्व देह से भिन्न है, तेरा सुख-दुःख देह में नहीं है। देह से तू अत्यंत भिन्न है।

—००—००—

'परद्रव्य का मैं कुछ कर सकता हूँ'—ऐसा परद्रव्य का कर्तापना स्वयं महा अहंकाररूप अज्ञानांधकार है और वह अनादि से चला आ रहा है। आत्मा के आश्रय बिना उस महा अहंकार का अभाव नहीं होता।

नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है

'समयसार-नाटक' द्वारा शुद्धात्मा का श्रवण करने से हृदय के फाटक खुल जाते हैं

[श्री समयसार-नाटक के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचन]

हृदय के फाटक खोलकर आत्मा का अनुभव करानेवाले यह प्रवचन सर्व जिज्ञासुओं को बहुत ही प्रिय लगे हैं... जिससे आत्मधर्म में यह लेखमाला चलती रहेगी... तदुपरांत समयसार-नाटक के प्रवचनों को पुस्तकरूप में प्रकाशित करने की भी योजना है।

* आत्मा के अनुभव द्वारा परम मोक्षसुख की प्राप्ति होती है। अहो, ऐसे अनुभवरस का हे जीवो! तुम सेवन करो। आत्मा के अनुभव की और ऐसे स्वानुभवी संतों की जितनी महिमा करें, उतनी कम है। स्वयं ऐसा अनुभव करना ही सार है। ऐसा अनुभव करने की बात समयसार में कही है, इसलिए कहते हैं कि—'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत हैं'।
* आत्मा के अनुभव में अत्यंत पवित्रता है, इसलिए अनुभव ही परमार्थ तीर्थ है। सम्मेदशिखर, गिरनार, शत्रुंजय आदि सिद्धक्षेत्र तो शुभभाव के निमित्तरूप व्यवहार तीर्थ हैं; परंतु यहाँ तो कहते हैं कि मोक्ष के लिए तो ऐसा अनुभव ही सच्चा तीर्थ है। जिसने स्वानुभव किया, उसका आत्मा स्वयं पवित्र तीर्थ बन गया; क्योंकि वह भवसागर से तारता है। असंख्यप्रदेशी आत्मा स्वयं स्वानुभवरूप मोक्षसाधना की भूमि है, इसलिए वही तीर्थधाम है, उसकी यात्रा करने से मोक्ष प्राप्त होता है। शुभराग को परमार्थ से भी तीर्थ नहीं कहते, शुद्ध रत्नत्रयरूप अनुभव को ही तीर्थ कहते हैं, कि जिसके द्वारा निश्चित ही भवसमुद्र को पार किया जा सकता है।
* ऐसा अनुभव वर्तमान में हो सकता है? तो कहते हैं कि हाँ, वर्तमान में भी

गृहस्थ को शुद्धात्मा का अनुभव हो सकता है। अरे, अनुभव क्या वस्तु है! उसे न समझे, उसकी महिमा न जाने, वह अनुभव कब करेगा? और अनुभव के बिना मोक्षमार्ग का द्वार कहाँ से खुलेगा? अनुभवप्रकाश में तो कहते हैं कि तिर्यंच, नारकी और गृहस्थों को भी आत्मा का निर्विकल्प-अनुभव कभी-कभी होता है।

* धर्म के उत्तम फल पकने के लिए अनुभव, वह उपजाऊ भूमि है। जिस प्रकार उत्तम रसवाली भूमि में अच्छा अनाज पैदा होता है, उसी प्रकार स्वानुभव ही ऐसी उत्तम भूमि है कि जिसमें सम्यग्दर्शन पैदा होता है। धर्म की अच्छी फसल तैयार होने के लिए अनुभव ही उत्तम उपजाऊ भूमि है।
* आत्मा तो अतीन्द्रिय आनंद की दुधारू गाय है, जो कि प्रतिदिन तथा सादि-अनंत काल तक आनंद का दूध दिया ही करती है, उसमें एकाग्र होने पर उसमें से तत्क्षण अतीन्द्रिय आनंद प्रगट होता है।
* देखो, यह कवि! सच्चे कवि तो ऐसे होते हैं जो आत्मा का गुणानुवाद करें; किंतु जिसने आत्मा को जाना होगा, वही उसके गुणगान करेगा। वाह, आत्मा की अद्‌भुत महिमा गायी है! चैतन्य का सर्वोत्तम अध्यात्मरस इस समयसार में घोला है।
* आत्म-अनुभव प्रगट होने पर कर्म खिर जाता है। कर्मचेतना छूटकर परम पद के साथ प्रीति होती है। आत्मा का जो परमस्वभाव और उसका परमात्मपद, उसके साथ प्रीति अनुभव द्वारा ही जुड़ती है। अनुभव के समान अन्य कोई धर्म नहीं है। ऐसे अनुभवधर्म से साधकपना जयवंत है। स्वानुभव-धर्म के बिना साधकपना नहीं होता।
* लोग कहते हैं 'प्रेमधर्म की जय'! यहाँ तो कहते हैं कि—'अनुभवधर्म की जय हो'! पर का प्रेम अर्थात् राग तो संसार का कारण है, उसका नाश करने जैसा है। अरे जीवो! आत्मा के परम स्वभाव का तो तुमने प्रेम नहीं किया तथा परभाव में प्रेम करके सुख माना-यह तो मूर्खता है। भाई! अपने हित के लिए परभावों से प्रीति छुड़ाकर आत्मा में प्रीति जोड़ो, तथा

उसका अनुभव करो। क्योंकि आत्मा का अनुभव ही मोक्ष का कारण है, इसलिए वही वीतरागमार्ग में जयवंत है। ऐसा आत्म-अनुभव करना ही वीतरागी शास्त्रों का तात्पर्य है।

* ऐसे महिमावंत आत्मा के अनुभव बिना किसी व्यवहार या राग को महिमा देने से तो आत्मा का अपमान होता है, इसकी अज्ञानी को खबर नहीं है। भाई! दूसरों की महिमा छोड़कर अपने परम महिमावंत आत्मा को जान।
* प्रत्येक द्रव्य अपनी अनंत पर्यायों सहित है। चेतनस्वरूप जीवद्रव्य भी अपनी अनंत गुण-पर्यायों सहित है, ऐसा आत्मा जैनशासन में सर्वज्ञ भगवान ने देखा है तथा संतों ने उसका अनुभव करके आगम में कहा है। ऐसे जीवद्रव्य को पहिचानकर अंतर में रागरहित अनुभव करना ही धर्म है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-6 (अक्टूबर-1971), वर्ष-27]

आस्रव और संवर

शुभाशुभ कर्मागमद्वाररूप आस्रवः।
आस्रव निरोधलक्षणः संवरः॥

सर्वार्थसिद्धि में पूज्यपाद स्वामी कहते हैं कि—

शुभ-अशुभकर्म जिससे आते हैं, वह आस्रव है। शुभराग द्वारा शुभकर्म का आगमन होता है, इसलिए वह आस्रव है, और वह बंध का कारण है, वह मोक्ष का कारण नहीं है।

आस्रव के निरोध को संवर कहा; यानी शुभकर्म का आस्रव भी जिससे रुकता है, वह संवर है, वह मोक्षमार्ग है। शुभकर्म का भी जिससे आस्रव हो, वह मोक्षमार्ग नहीं है।

आस्रव की और संवर की ऐसी स्पष्ट व्याख्या समझे, तभी मोक्षमार्ग का सच्चा निर्णय होता है।

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान श्री आचार्यदेव
शुभनन्दि व आचार्य रविनन्दि

निज आत्मा की महिमा में सराबोरपन से अतीन्द्रिय आनंद में झूलते मुनिवरों को निज आत्मा की स्वाभाविक पूर्णदशा के अलावा और कुछ नहीं भाता। अत: ऐसे मुनिवरेन्द्रों ने अपने बारे में कहीं भी कुछ नहीं लिखा। इतिहासकार आपके बारे में या तो किवदन्तियों से या आपके पश्चात्वर्ती हुए आचार्यों ने आपके बारे में जो कुछ लिखा हो, उससे या आप द्वारा रचित अमूल्य धरोहररूप शास्त्रों द्वारा संशोधित करके परिचय देते हैं। आचार्य शुभनन्दि व वीरनन्दि के बारे में ऐसा कुछ भी नहीं, कि जिनके आधार से ऐसे श्रुतधर आचार्यों का जीवन जाना जा सके।

मात्र धवला टीका के आधार से इतना ही मिलता है कि आप अत्यंत कुशाग्रबुद्धिवंत महान श्रुतधर आचार्यवर थे। आप दोनों ही सिद्धांतग्रंथ के ज्ञाता थे। अत: उसके अंतर्गत आप षट्खण्डागम के भी ज्ञाता थे। आप आचार्य बप्पदेव के शिक्षागुरु थे। आप दोनों ही समकालीन थे। आपको सिद्धांतग्रंथों का ज्ञान गुरुपरम्परा से प्राप्त हुआ था।

आपसे ही सिद्धांतग्रंथों का अध्ययन करके भगवान आचार्यवर बप्पदेवजी ने महाबन्धखण्ड को छोड़कर पाँच खण्डों पर 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' नामक टीका लिखी। तत्पश्चात् उन्होंने छट्ठे खण्ड की टीका संक्षेप में लिखी, बाद में कसायपाहुड़ पर भी टीका लिखी। जिसके आधार पर भगवान वीरसेनस्वामी ने—धवला-जयधवला टीका में आपको धवला-जयधवला टीका के आद्यस्रोत माना है।

आप दोनों ने यद्यपि कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं रचा होने पर भी 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' के रचयिता आचार्य बप्पदेव के आप गुरु थे। धवला व

जयधवला टीका के आद्यस्त्रोत होने से, आपको धवलाकार ने बहुत ही आदर से स्मृत किया, जिससे आपके बारे में यत्किंचित् जाना जाता है।

इतिहासकारों के अनुसार आप ईसु की प्रथम शताब्दि के-मध्य पादवर्ती आचार्य थे।

व्याख्याप्रज्ञप्ति के उपदेशक आचार्यदेव शुभनन्दि व रविनन्दि भगवंत को कोटि-कोटि वन्दन।

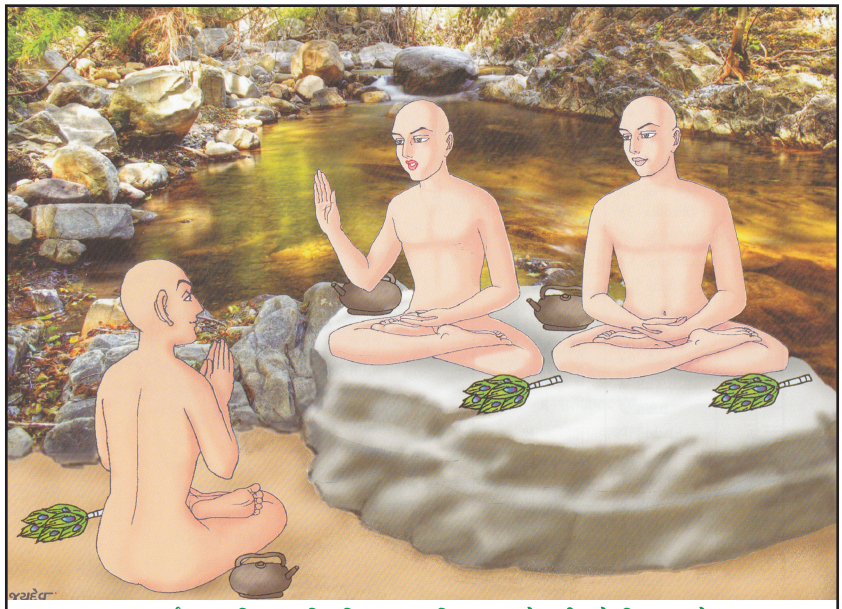

आचार्य शुभनन्दि व रविनन्दि द्वारा मुनिवर बप्पदेवजी को सिद्धान्तबोध

भगवान श्री आचार्यदेव
आचार्य बप्पदेव

सिद्धांतग्रंथों के ज्ञाता भगवान आचार्य बप्पदेव अपने समय के जाने-माने आचार्य थे। शुभनन्दि, रविनन्दि व बप्पदेव आदि के नाम श्रुतधराचार्यों में आते हैं। भगवान आचार्य शुभनन्दि और रविनन्दि नाम के दो आचार्य

अत्यंत कुशाग्रबुद्धि के हुए हैं। इनसे आचार्य बप्पदेव ने समस्त सिद्धांतग्रंथ का अध्ययन किया।

आचार्य बप्पदेव ने वेलगाँव[१] जिले के अंतर्गत उत्कलिका नगरी के समीप 'मगणवल्ली' ग्राम में उक्त दोनों गुरुवर्यों से सिद्धांत का अध्ययन किया था। इस अध्ययन के पश्चात् आपने महाबन्ध को छोड़ शेष पाँच खण्डों पर व्याख्याप्रज्ञप्ति नाम की टीका लिखी और छठे खण्ड की संक्षिप्त विवृत्ति भी लिखी। इन छहों खण्डों के पूर्ण हो जाने के पश्चात् आपने कसायप्राभृत की एक उच्चारणा टीका भी रची।

इस भाँति षट्खण्डों में से महाबन्ध को पृथक् कर शेष पाँच खण्डों की 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' नामक षट्खण्ड पर टीका भगवान आचार्यदेव बप्पदेव ने लिखी। वीरसेन स्वामी ने वट्टगाँव (बड़ौदा) में उक्त षट्खण्डों में से व्याख्याप्रज्ञप्ति को प्राप्त कर, उससे प्रेरित हो, सत्कर्म नामक छठे खण्डों को मिलाकर छह खण्डों पर धवला टीका लिखी। धवला के अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है, कि व्याख्याप्रज्ञप्ति प्राकृतभाषारूप पुरातन व्याख्या रही है। इस भाँति आचार्य बप्पदेव सिद्धांतविषय के मर्मज्ञ थे।

आचार्यवर बप्पदेव की व्याख्याप्रज्ञप्ति के अलावा अन्य कोई भी रचना उपलब्ध नहीं है। फिर भी धवला एवं जयधवला में आपके नाम से जो उद्धरण आते हैं, उनसे आपके वैदुष्य पर प्रकाश पड़ता है। षट्खण्डागम में आपका यत्र-तत्र उल्लेख है। अतएव आचार्य के रूप में 'बप्पदेव' अत्यन्त प्रतिष्ठित हैं।

आप ईसु की प्रथम शताब्दी के मध्यपाद काल में हुए आचार्यदेव हैं।

व्याख्याप्रज्ञप्ति रचयिता आचार्यदेव बप्पदेव भगवंत को कोटि-कोटि वन्दन।

---

१. भागीरथी कृष्णा नदी की शाखा है और इनके बीच का प्रदेश बेलगाँव या धारवाड अर्थात् बेलगाँव जिला कहलाता है।

उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला

उत्सूत्रभाषण से जिनाज्ञा का भंग

जिणवर आणा भंगं, उमग्ग-उस्सुत्त लेस देसणयं।
आणा भंगे पावं, ता णिमयं दुक्करं धम्मं॥11॥

अर्थात् - जिन आज्ञ का उल्लंघन करके उन्मार्ग-उत्सूत्र का जो अंश मात्र भी उपदेश देना है, वह जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का भंग करना है और मार्ग का उल्लंघन करके प्रवर्तना है तथा जिन आज्ञा भंग करने में इतना अधिक पाप है कि उसे फिर जिनभाषित धर्म को पाना अत्यंत दुर्लभ हो जाता है।

मंदिरजी का द्रव्य बरतनेवाला महापापी है

जिणवर आणा रहिअं, वट्टारंता वि केवि जिणदव्वं।
बुड्डंति भव-समुद्दे, मूढा मोहेण अण्णाणी॥12॥

अर्थात् - कई पुरुष जिनाज्ञा रहित जिनद्रव्य अर्थात् मंदिरजी के द्रव्य को अपने प्रयोग में लेते हैं, वे अज्ञानी मोह से संसार समुद्र में डूबते हैं॥

दुराग्रही उपदेश का पात्र नहीं

कुग्गहगह-गहियाणं, मुद्धो जो देइ धम्म उवएसो।
सो चम्मासी कुक्कुर, वयणम्मि खवेइ कप्पूरं॥13॥

अर्थात् - खोटे आग्रह रूपी ग्राह (मगर अथवा पिशाच) से ग्रहे हुए जीवों को जो मूर्ख धर्मोपदेश देता है, वह चमड़ा खानेवाले कुत्ते के मुख में कपूर को रखने जैसी चेष्टा करता है।

जिनसूत्रभाषी व उत्सूत्रभाषी का विवेचन

रोसो वि खमाकोसो, सुत्तं भासंत जस्स धण्णस्स।
उह्यसुत्तेण खमा वि य, दोस महामोह आवासो॥14॥

अर्थात् - जिनसूत्र के अनुसार उपदेश देनेवाले उत्तम वक्ता का रोष भी करे तो वह क्षमा का भंडार है और जो पुरुष जिनसूत्र के विरुद्ध उपदेश देता है, उसकी क्षमा भी रागादि दोष तथा मिथ्यात्व का ठिकाना है।

जिनधर्म को कष्ट सहकर भी जान

इक्को वि ण संदेहो, जं जिणधम्मेण अत्थि मोक्खसुहं।
तं पुण दुव्विण्णेयं, अइ उक्किट्ठ पुण्णरसियाणं॥15॥

अर्थात् – जिनधर्म के सेवन से मोक्षसुख प्राप्त होता है—इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं है, इसलिए जो पुरुष धर्म के अति उत्कृष्ट रस के रसिक हैं, उन्हें यह जिनधर्म कष्ट करके भी जानना योग्य है।

जिनमत का ज्ञान दुर्लभ है

सव्वं पि वियाणिज्जइ, लब्भइ तह चउरिमाय जणमज्झे।
एक्कं पि भाय! दुलहं, जिणमयं विहि रयण सुविआणं॥16॥

अर्थात् – और लौकिक वार्ताओं को तो सभी जानते हैं तथा वैसे ही चौराहे पर पड़ा हुआ रत्न भी मिल सकता है परंतु हे भाई! जिनेन्द्रभाषित धर्मरूपी रत्न का सम्यक् ज्ञान दुर्लभ है इसलिए जैसे भी बने वैसे जिनधर्म का स्वरूप जानना—यह तात्पर्य है।

शुद्ध सम्यक्त्व को कहनेवाले भी दुर्लभ हैं

मिच्छत्त बहुल उयरा, विसुद्ध सम्मत्त कहणमवि दुलहं।
जह वर णरवर चरियं, पाव णरिंदस्स उदयम्मि॥17॥

अर्थात् – मिथ्यात्व के तीव्र उदय में विशुद्ध सम्यक्त्व का कथन करना भी उसी प्रकार दुर्लभ हो जाता है। जिस प्रकार पापी राजा के उदय में न्यायवान राजा का आचरण दुर्लभ होता है।

बहुत गुणवान भी उत्सूत्रभाषी त्याज्य है

बहुगुणविज्जाणिलओ, उह्यसूत्तभासी तहा विमुत्तव्वो।
जह वरमणिजुत्तो वि हु, वि विग्घयरो विसहरो लोए॥18॥

अर्थात् – सूत्र का उल्लंघन करके उपदेश देनेवाला पुरुष भले ही क्षमादि बहुत से गुणों और व्याकरणादि अनेक विद्याओं का स्थान हो तो भी वह उसी प्रकार त्याग देने योग्य है। जिस प्रकार लोक में श्रेष्ठ मणि सहित भी विषधर सर्प विघ्नकारी होने से त्याज्य ही होता है।

पूज्यश्री निहालभाई सोगानी का प्रेरणास्पद पत्र

कलकत्ता

5-7-1953

धर्मप्रेमी..... से निहालचन्द्र का धर्मस्नेह।

कार्ड आपका मिला। पूर्व पत्र कुछ चिंतित दशा के समय लिखा गया था, अत: शायद आपको कुछ ख्याल-सा हुआ दिखता है।

जिस सामान्य ध्रुव स्वभाव में चिंता व अचिंता—दोनों की पर्याय का अभाव है, उसके आश्रय पश्चात् बेचारी अल्प चिंता की स्थिति ही कितनी ?

पूज्य गुरुदेवश्री की अनुभव रस से भीगी हुई वाणी वहाँ 'कर्ताकर्म अधिकार' की वर्षा कर रही है—अहा! आपकी इस हार्दिक भावना का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ कि, मैं भी आप सबों के संग इस वर्षा में स्नान करूँ।

अरे विकल्प! यदि तुझे तेरी आयु प्रिय है, तो अन्य सब को गौण कर व गुरुदेव के संग में ले चल, वरना उनका दिया हुआ वीतरागी अस्त्र शीघ्र ही तेरा अन्त कर डालेगा।

स्वसंग, गुरुसंग व मुमुक्षुसंग के अलावा दूसरे संग को नहीं इच्छते हुए भी, अरे प्रारब्ध! विष-तुल्य संग में रहना पड़ रहा है, खेद है।

पूर्ण चेष्टा है, शीघ्र योग मिलते ही वहाँ आऊँ; परंतु अभी कोई नज़दीक समय दिखाई नहीं देता है, फिर-भी प्रयत्न पूरा है।

सबों को यथायोग्य।

धर्मस्नेही : निहालचंद्र

सिर ढँकना लौकिक एवं लोकोत्तर परम्परा

धार्मिक परिसर मन्दिर, स्वाध्यायभवन आदि में सिर ढँककर जाना भारतीय एवं धार्मिक संस्कृति है। धार्मिक परिसर में तो भारत के किसी भी सम्प्रदाय में सिर ढँकने का नियम है ही, फिर जिनमन्दिर जैसे पवित्र स्थान पर तो सिर ढँककर ही प्रवेश करना चाहिए। विशेषकर महिलाओं के लिए तो यह अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि बहिनों के केश बड़े होने के कारण गिरते रहते हैं। उससे पवित्र स्थान में गन्दगी का दोष लगता है तथा बिना सिर ढँके रहने से शील की मर्यादा भी भंग होती है।

यदि लौकिक दृष्टि से देखा जाए तो ऑपरेशन थियेटर में डाक्टर एवं नर्स सभी सिर ढँककर ही काम करते हैं। यहाँ तक कि होटल जैसे अपवित्र स्थान में भी वेटर और भोजन बनानेवाला रसोईया भी सिर ढँककर भोजन बनाते और परोसते हैं; क्योंकि हमारे अशुचि बाल निरन्तर झरते रहते हैं।

सभी धर्मों में प्राय: स्त्रियों को सिर पर पल्लू या दुपट्टा रखने का रिवाज है। सिर को ढँकना सम्मान सूचक माना जाता है, साथ ही इसके पीछे वैज्ञानिक कारण भी है माना जाता है कि–सिर मनुष्य का सबसे संवेदनशील स्थान है, पूजनादि के समय इसे ढँककर रखने से मन एकाग्र बना रहता है नंगे सिर पूज्य के समक्ष जाना ठीक नहीं माना जाता। यह मान्यता है जिसका हम सम्मान करते हैं उसके सामने हमेशा सिर ढँककर रखना चाहिए; इससे पूज्य के प्रति जो सम्मान और समर्पण है उसकी अभिव्यक्ति होती है।

विज्ञान के अनुसार माना जाता है कि आकाशीय विद्युत तरंगें खुले सिरवाले व्यक्ति के भीतर क्रोध, सिरदर्द, आँखों में कमजोरी आदि कई प्रकार के रोगों को जन्म देती है। खुले सिर रखने से सिर के बालों में रोग फैलानेवाले कीटाणु सरलता से दूसरे के संपर्क में चले जाते हैं जिसकी वजह है व्यक्ति रोगी बन जाता है। सिर को ढँकने से हमारे कान भी सुरक्षित रहते हैं। सिर को ढँकने से गंजापन, बाल झड़ना, डेंड्रफ आदि रोगों से सरलता से बचा जा सकता है।

यद्यपि यह धार्मिक रीति से बात सर्वथा सत्य नहीं है तथापि प्रथमानुयोग आदि के देखने से यह ज्ञात होता है कि जैन परम्परा में भी स्त्रियों के ही नहीं अपितु पुरुषों के भी सदा से सिर ढँकने की परम्परा रही है। राजा से लेकर दूत तक; कोई साफा, कोई पगड़ी आदि धारण किये रहते हैं। सिर ढँकने का एक यह भी मनोवैज्ञानिक कारण है कि हमारे सिर पर देव-गुरु-धर्म की छाया है। खुला सिर महिलाओं के लिए तो वैसे भी निर्लज्जता का कारण कहा जाता है। आज भी संस्कारी परिवार की बहुयें घर में बड़ों के सामने सिर पर पल्लू ढँककर ही रहती हैं। फिर सामूहिक स्थान जहाँ पर बहुत लोगों की नजर जाए वहाँ पर तो, बहनों को सिर ढँककर ही रहना चाहिए।

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं - धार्मिक, सामाजिक पारिवारिक, वैज्ञानिक, नैतिक आदि सभी दृष्टि से विचार किया जाए तो यही फलित होता है कि धार्मिक परिसर में तो कम से कम स्त्रियों को सिर ढँककर ही प्रवेश करना चाहिए। यहाँ कोई पुरुषों को छूट दी जा रही हो ऐसा भी नहीं है। तथापि स्त्रियों के लिये तो यह अत्यन्त आवश्यक है।

इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए तीर्थधाम मङ्गलायतन ने, तीर्थधाम परिसर में बहिनों के लिए सिर ढँकने का नियम बना दिया है। विगत छह माह से इसका सुचारूरूप से पालन भी हो रहा है। मुख्य द्वार पर दुपट्टों की व्यवस्था की गई है। जिन बहिनों पर दुपट्टे की व्यवस्था नहीं है, उनको दुपट्टा दिया जाता है। वापसी में, वापस ले लिया जाता है। तीर्थधाम मङ्गलायतन की इस परम्परा का अनुकरण, सभी धार्मिक संस्थाएँ करें तो मन्दिरों में शीलधर्म की मर्यादा बनी रहेगी। इति **-सम्पादक की कलम से**

तीर्थधाम चिदायतन में
श्री पवन जैन परिवार द्वारा रत्नत्रय विधान

तीर्थधाम चिदायतन : श्री पवन जैन, स्वप्निल जैन परिवार द्वारा तीर्थधाम चिदायतन में 8 अप्रेल 2018 को श्री रत्नत्रय विधान का भव्य आयोजन किया गया। जिसमें सैकड़ों आत्मार्थियों ने धर्म लाभ प्राप्त किया। प्रात: श्री जिनेन्द्र प्रक्षाल एवं नित्य नियम की पूजन के पश्चात् श्री रत्नत्रय विधान पण्डित संजय शास्त्री एवं सुधीर शास्त्री के निर्देशन में पण्डित नवीन शास्त्री एवं मङ्गलार्थियों ने भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न कराया।

इस विधान में श्री पवन-आशा-स्वप्निल-आर्जव जैन के साथ-साथ चिदायतन परिवार के कई ट्रस्टी भी मौजूद थे। दिल्ली, मेरठ, रुड़की एवं देहरादून के साधर्मियों ने इस विधान में भाग लिया। विधान समापन के समय स्वप्निल जैन के सुपुत्र आर्जव जैन ने एक सुन्दर भक्तिगीत प्रस्तुत किया। भगवान के समक्ष दिल्ली पब्लिक स्कूल के संगीत विभाग के टीचर बज्जूभाई एवं अमितजी ने चिदायतन का आह्वान गीत प्रस्तुत किया। इस गीत के मध्य साधर्मियों ने उत्साहपूर्वक भगवान के समक्ष नृत्य प्रस्तुत किया। विधान समापन के अवसर पर ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री अजितप्रसाद जैन ने आह्वान किया कि इसी प्रकार प्रत्येक महीने में एक विधान का आयोजन यहाँ किया जाए। जिसकी अनुमोदना सभी साधर्मियों ने ताली बजाकर की। सम्पूर्ण कार्यक्रम का संयोजन श्री मुकेश जैन मेरठ एवं स्वप्निल जैन ने किया।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में
पूज्य गुरुदेवश्री का जन्मदिवस

तीर्थधाम मङ्गलायतन : हम सबके तारणहारे पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का जन्मदिवस 17 अप्रेल 2018 को उल्लासपूर्वक मनाया गया। जिसमें प्रात:काल श्री जिनेन्द्र पूजन के बाद पूज्य गुरुदेवश्री का भवतापहारी वीडियो प्रवचन का प्रसारण किया गया। पण्डित सचिन जैन एवं सुधीर जैन ने पूज्य गुरुदेवश्री के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का परिचय मङ्गलार्थियों को दिया। इसके पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का गुणानुवाद किया गया।

दोपहर काल में पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन पर आधारित चलचित्र प्रस्तुत किया

गया। जिसे देखकर मङ्गलार्थियों को आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा प्राप्त हुई। संध्याकाल में श्री जिनेन्द्रभक्ति के पश्चात् विद्वानों के समक्ष पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन पर एक ज्ञानगोष्ठी का आयोजन किया। जिसमें पूज्य गुरुदेवश्री पर भाषण, कविता एवं भजन आदि प्रस्तुत किये गये। श्री पवन जैन, स्वप्निल जैन, पण्डित गोमटेश शास्त्री, पण्डित नवीन शास्त्री आदि ने भी अपने पूज्य गुरुदेवश्री के विषय में भावसुमन समर्पित किये।

लोनावाला के श्री जिनमन्दिर में महावीर जयन्ती समारोह एवं पौराणिक चित्रों का अनावरण

मुम्बई : मुम्बई-पूना हाईवे पर स्थित उपनगर लोनावाला के श्री महावीर दिगम्बर जिनालय में महावीर जयन्ती महोत्सव अत्यन्त धूमधाम से आयोजित किया गया। साथ ही श्री गुरुदेव के परिवर्तन दिवस के अवसर पर स्वाध्यायभवन में श्री नगीनदास भायाणी परिवार कोलकाता द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की प्रतिकृति स्थापित की गयी। कार्यक्रम में प्रात: भगवान महावीरस्वामी की सामूहिक पूजन की गयी। इसके पश्चात् गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन हुआ। तदुपरान्त बालब्रह्मचारी हेमन्त गाँधी का प्रासंगिक प्रवचन हुआ, साथ ही गुरुदेवश्री के परिवर्तन समय की तात्कालिक परिस्थितियों से अवगत कराया।

प्रवचन के बाद जिनमन्दिर और स्वाध्यायभवन में नवीन स्थापित तीर्थक्षेत्रों, आचार्य भगवन्तों, परमागम की गाथाओं, प्राचीन ज्ञानी विद्वानों, पौराणिक कथाओं और जिनशासन परम्परा के पाषाण शिलापट्टों की अनावरण विधि संपन्न की गयी। इस अवसर पर अनन्तराय सेठ परिवार, शारदाबेन रतिलाल शाह परिवार, अक्षयभाई दोशी परिवार के सदस्यों के साथ मुम्बई और पूना के लगभग 400 मुमुक्षु साधर्मी उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन विराग शास्त्री जबलपुर द्वारा किया गया।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन का समाधि दिवस

तीर्थधाम मङ्गलायतन : वैशाखी वदी तीन, दिनांक 2-5-2018 पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन का समाधि दिवस मनाया गया। जिसमें श्री पवन जैन, पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित संजय शास्त्री,

पण्डित गोमटेश शास्त्री, पण्डित नवीन शास्त्री, श्री स्वप्निल जैन एवं मङ्गलार्थी छात्र उपस्थित थे।

सभी महानुभावों ने बहिनश्री के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालते हुए अपने उद्‌गार व्यक्त किये। इस प्रसंग पर मङ्गलार्थियों ने बहिनश्री के बोलों का वाँचन किया।

कोलकाता में

पूज्यश्री निहालभाई सोगानी की 106वीं जन्म-जयन्ती

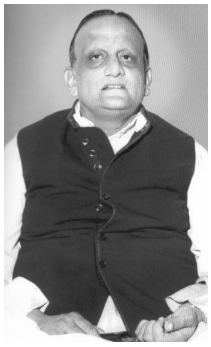

कोलकाता : 21 अप्रेल से 26 अप्रेल 2018 तक पण्डित संजय शास्त्री तीर्थधाम मङ्गलायतन के निर्देशन में कोलकाता मुमुक्षु मण्डल में पूज्य निहालभाई सोगानी की जन्म-जयन्ती धूमधाम से मनायी गयी। जिसमें प्रात:काल श्री सिद्ध परमेष्ठी विधान, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन एवं पूज्य निहालभाई सोगानीजी के पत्रों पर पण्डित संजय शास्त्री मङ्गलायतन ने स्वाध्याय कराया। रात्रि काल में आध्यात्मिक भक्ति संध्या, बहिनश्री की तत्त्वचर्चा एवं पण्डित संजय शास्त्री द्वारा सोगानीजी के बोलों पर स्वाध्याय कराया गया। पण्डित संजयजी के ही द्वारा पौराणिक कथाओं का वाँचन भी किया गया।

अन्तिम दिन पूज्य सोगानीजी के विषय में श्री प्रकाशभाई, श्री रमेशभाई सोगानी आदि महानुभावों ने अपने उद्‌गार व्यक्त किये। इस जन्म-जयन्ती के अवसर पर सम्पूर्ण सोगानी परिवार कोलकाता में इकट्ठा हुआ। सम्पूर्ण कार्यक्रम का संचालन पण्डित अमित शास्त्री फुटेरा एवं संयोजन श्री रमेश सोगानी कोलकाता ने किया। अन्तिम दिन तीर्थधाम मङ्गलायतन का परिचय दिया गया, जिसमें कोलकाता मुमुक्षु मण्डल ने यथासम्भव सहयोग दिया।

वैराग्य समाचार

सागर : श्रीमती कुन्ती देवी धर्मपत्नी पण्डित श्री मन्नूलालजी वकील, सागर का शान्तपरिणामपूर्वक 14-4-2018 को देहपरिवर्तन हो गया।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार आपके शीघ्र निर्वाण की भावना भाता है।

हे गुरुदेव! लोकोत्तर लाभ हेतु आपके वचनों पर श्रद्धा की है, आशीर्वाद देता हुआ आपका मोहक चित्र देखा है। आपके आशीर्वाद से पूर्ण आनंदमयी निधि को प्राप्त हो जाऊँ और अनंत पदार्थों के तीनकाल के अनंते भाव वर्तमान एक-एक भाव से अविच्छिन्न प्रत्यक्ष होते रहें-ऐसी तीव्र अभिलाषा है।

दरिद्री को चक्रवर्तीपने की कल्पना नहीं होती। पामरदशावाले को 'भगवान् हूँ.....भगवान् हूँ' की रटन लगाना, हे प्रभो! आप जैसे असाधारण निमित्त का ही कार्य है। परिणति को आत्मा ही निमित्त होवे अथवा भगवान्.....भगवान् की गुँजार करते आप; अन्य संग नहीं;-यह ही भावना।

अनुमोदना में कुरात्मा
हृदय भावना

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

'मैं वर्तमान में ही मुक्त हूँ, आनंद की मूर्ति हूँ, आनंद से भरचक समुद्र ही हूँ'—ऐसी दृष्टि हो, तो फिर मोक्ष से भी प्रयोजन नहीं; मोक्ष हो तो हो, न हो तो भी क्या ?

मेरे को तो वर्तमान में ही आनंद आ रहा है फिर पर्याय में तो मोक्ष होगा ही। लेकिन मेरे को तो उससे भी प्रयोजन नहीं।9.

*

कुछ करना, सो मरने बराबर है। मुझे शुरु से ही कुछ करने के भाव में मरने जैसा बोझा लगता था। शुभपरिणाम होते (तो) मैं भट्ठी में जल रहा हूँ—ऐसा लगता था।

समुद्र के जल में से एक बूँद उड़कर बाहर पड़े, तो उस बूँद को रेत चूस कर खत्म कर देगी; और यदि गर्म रत हो, तो बूँद तुरत खत्म हो जावेगी। वैसे ही परिणाम बाहर की ओर जाए (तो) उसमें दु:ख ही दु:ख है।10.

— पूज्यश्री निहालचन्द्र सोगानी

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com